भरतजी का तीर्थ जल स्थापन तथा चित्रकूट भ्रमण

चौपाई :

*** भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥ सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहँ कूप अगाधू॥1॥ भावार्थ:

भरतजी ने अत्रिमुनि की आज्ञा पाकर जल के सब पात्र रवाना कर दिए और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रि मुनि तथा अन्य साधु-संतों सहित आप वहाँ गए, जहाँ वह अथाह कुआँ था॥1॥

*** पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥ तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेउ काल बिदित नहिं केहू॥2॥

भावार्थ:

और उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में रख दिया। तब अत्रि ऋषि ने प्रेम से आनंदित होकर ऐसा कहा- हे तात! यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रम से यह लोप हो गया था, इसलिए किसी को इसका पता नहीं था॥2॥

*** तब सेवकन्ह सरस थलुदेखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा॥ बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥3॥

भावार्थ:

तब (भरतजी के) सेवकों ने उस जलयुक्त स्थान को देखा और उस सुंदर (तीर्थों के) जल के लिए एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोग से विश्वभर का उपकार हो गया। धर्म का विचार जो अत्यन्त अगम था, वह (इस कूप के प्रभाव से) सुगम हो गया॥3॥

*** भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥ प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहहिं बिमल करम मन बानी॥4॥

भावार्थ:

अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थों के जल के संयोग से तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, वचन और कर्म से निर्मल हो जाएँगे॥4॥

दोहा :

*** कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराउ। अत्रि सुनायउ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाउ॥310॥

भावार्थ:

कूप की महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गए जहाँ श्री रघुनाथजी थे। श्रीरघुनाथजी को अत्रिजी ने उस तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया॥310॥

चौपाई :

*** कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती॥ नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥1॥

भावार्थ:

प्रेमपूर्वक धर्म के इतिहास कहते वह रात सुख से बीत गई और सबेरा होगया। भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्यक्रिया पूरी करके, श्री रामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर,॥1॥

*** सहित समाज साज सब सादें। चले राम बन अटन पयादें॥ कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥2॥

भावार्थ:

समाज सहित सब सादे साज से श्री रामजी के वन में भ्रमण (प्रदक्षिणा) करने के लिए पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूते के चल रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गई॥2॥

*** कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥ महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥3॥

भावार्थ:

कुश, काँटे, कंकड़ी, दरारों आदि कड़वी, कठोर और बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुंदर और कोमल मार्ग कर दिए। सुखों को साथ लिए (सुखदायक) शीतल, मंद, सुगंध हवा चलने लगी॥3॥

*** सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताहीं॥ मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥4॥

भावार्थ:

रास्ते में देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, तृण अपनी कोमलता से, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुंदर वाणी बोलकर सभी भरतजी को श्री रामचन्द्रजी के प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे॥4॥

दोहा :

*** सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात। राम प्रानप्रिय भरत कहुँ यह न होइ बड़ि बात॥311॥

भावार्थ:

जब एक साधारण मनुष्य को भी (आलस्य से) जँभाई लेते समय 'राम' कह देने से ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब श्री रामचन्द्रजी के प्राण प्यारे भरतजी के लिए यह कोई बड़ी (आश्चर्य की) बात नहीं है॥311॥

चौपाई :

*** एहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥ पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार भरतजी वन में फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेम को देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जल के स्थान (नदी, बावली, कुंड आदि) पृथ्वी के पृथक-पृथक भाग, पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण (घास), पर्वत, वन और बगीचे-॥1॥

*** चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिब्य सब देखी॥ सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ॥2॥

भावार्थ:

सभी विशेष रूप से सुंदर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रिजी प्रसन्न मन से सबके कारण, नाम, गुण और पुण्य प्रभाव को कहते हैं॥2॥

*** कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥ कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥3॥

भावार्थ:

भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानों के दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रिजी की आज्ञा पाकर बैठकर, सीताजी सहित श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं॥3॥

*** देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥ फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥4॥

भावार्थ:

भरतजी के स्वभाव, प्रेम और सुंदर सेवाभाव को देखकर वनदेवता आनंदित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिरकर ढाई पहर दिन बीतने पर लौट पड़ते हैं और आकर प्रभु श्री रघुनाथजी के चरणकमलों का दर्शन करते हैं॥4॥

दोहा :

*** देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ। कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ॥312॥

भावार्थ:

भरतजी ने पाँच दिन में सब तीर्थ स्थानों के दर्शन कर लिए। भगवान विष्णु और महादेवजी का सुंदर यश कहते-सुनते वह (पाँचवाँ) दिन भी बीत गया, संध्या हो गई॥312॥

श्री राम-भरत-संवाद, पादुका प्रदान, भरतजी की बिदाई

चौपाई :

*** भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहु तिराजू॥ भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥1॥

भावार्थ:

(अगले छठे दिन) सबेरे स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करने के लिए अच्छा दिन है, यह मन में जानकर भी कृपालु श्री रामजी कहने में सकुचा रहे हैं॥1॥

*** गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥ सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी ने गुरु वशिष्ठजी, राजा जनकजी, भरतजी और सारी सभा की ओर देखा, किन्तु फिर सकुचाकर दृष्टि फेरकर वे पृथ्वी की ओर ताकने लगे। सभा उनके शील की सराहना करके सोचती है कि श्री रामचन्द्रजी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है॥2॥

*** भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥ करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥3॥

भावार्थ:सुजान भरतजी श्री रामचन्द्रजी का रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठकर, विशेष रूप से धीरज धारण कर दण्डवत करके हाथ जोड़कर कहने लगे- हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रखीं॥3॥

*** मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥ अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥4॥

भावार्थ:

मेरे लिए सब लोगों ने संताप सहा और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर अवधि भर (चौदह वर्ष तक) अवध का सेवन करूँ॥4॥

दोहा :

*** जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल। सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥313॥

भावार्थ:

हे दीनदयालु! जिस उपाय से यह दास फिर चरणों का दर्शन करे- हे कोसलाधीश! हे कृपालु! अवधिभर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए॥313॥

चौपाई :

*** पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईं॥ राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥1॥

भावार्थ:

हे गोसाईं! आपके प्रेम और संबंध में अवधपुर वासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनंद) से युक्त हैं। आपके लिए भवदुःख (जन्म-मरण के दुःख) की ज्वाला में जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद (मोक्ष) का लाभ भी व्यर्थ है॥1॥

*** स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥ प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू॥2॥

भावार्थ:

हे स्वामी! आप सुजान हैं, सभी के हृदय की और मुझ सेवक के मन की रुचि, लालसा (अभिलाषा) और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल! आप सब किसी का पालन करेंगे और हे देव! दोनों ओर अन्त तक निबाहेंगे॥2॥

*** अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किएँ बिचारु न सोचु खरो सो॥ आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू॥3॥

भावार्थ:

मुझे सब प्रकार से ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है। विचार करने पर तिनके केबराबर (जरा सा) भी सोच नहीं रह जाता! मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिलकर मुझे जबर्दस्ती ढीठ बना दिया है॥3॥

*** यह बड़ दोषु दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥ भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी॥4॥

भावार्थ:

हे स्वामी! इस बड़े दोष को दूर करके संकोच त्याग कर मुझ सेवक को शिक्षा दीजिए। दूध और जल को अलग-अलग करने में हंसिनी की सी गति वाली भरतजी की विनती सुनकर उसकी सभी ने प्रशंसा की॥4॥

दोहा :

*** दीनबंधु सुनि बंधु के वचन दीन छलहीन। देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन॥314॥

भावार्थ:

दीनबन्धु और परम चतुर श्री रामजी ने भाई भरतजी के दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल वचन बोले-॥314॥

चौपाई :

*** तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥ माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहूँ न कलेसू॥1॥

भावार्थ:

हे तात! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिंता गुरु वशिष्ठजी और महाराज जनकजी को है। हमारे सिर पर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्रजी और मिथिलापति जनकजी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न नें भी क्लेश नहीं है॥1॥

*** मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥ पितु आयसु पालिहिं दुहु भाईं। लोक बेद भल भूप भलाईं॥2॥

भावार्थ:

मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिताजी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है॥2॥

*** गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खालें॥ अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥3॥

भावार्थ:

गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड्ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो॥3॥

*** देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥ तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥4॥

भावार्थ:

देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजी की चरण रज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना॥4॥

दोहा :

*** मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक। पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥315॥

भावार्थ:

तुलसीदासजी कहते हैं- (श्री रामजी ने कहा-) मुखिया मुख के समानहोना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सबअंगों का पालन-पोषण करता है॥315॥

चौपाई :

*** राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥ बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥1॥

भावार्थ:

राजधर्म का सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्री रघुनाथजी ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाए बिना उनके मन में न संतोष हुआ, न शान्ति॥1॥

*** भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥ प्रभु करि कृपापाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥2॥

भावार्थ:

इधर तो भरतजी का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति! यह देखकर श्री रघुनाथजी संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गए (अर्थात भरतजी के प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है।) आखिर (भरतजी के प्रेमवश) प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने कृपा कर खड़ाऊँ दे दीं और भरतजी ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया॥2॥

*** चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥ संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥3॥

भावार्थ:

करुणानिधान श्री रामचंद्रजी के दोनों ख़ड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए मानो डिब्बा है और जीव के साधन के लिए मानो राम-नाम के दो अक्षर हैं॥3॥

*** कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥ भरत मुदित अवलंब लहे तें। अस सुख जस सिय रामु रहे तें॥4॥

भावार्थ:

रघुकुल (की रक्षा) के लिए दो किवाड़ हैं। कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करने के लिए दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं और सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरतजी इस अवलंब के मिल जाने से परम आनंदित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसा श्री सीता-रामजी के रहने से होता है॥4॥

दोहा :

*** मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ। लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥316॥

भावार्थ:

भरतजी ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्री रामचंद्रजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इंद्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया॥316॥

चौपाई :

*** सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥ नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥1॥

भावार्थ:

वह कुचाल भी सबके लिए हितकर हो गई। अवधि की आशा के समान ही वह जीवन के लिए संजीवनी हो गई। नहीं तो (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मणजी, सीताजी और श्री रामचंद्रजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सब लोग घबड़ाकर (हाय-हाय करके) मर ही जाते॥1॥

*** रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥ भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु न कहि न परत सो॥2॥

भावार्थ:

श्री रामजी की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी। देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही गुणदायक (हितकरी) और रक्षक बन गई। श्री रामजी भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिल रहे हैं। श्री रामजी के प्रेम का वह रस (आनंद) कहते नहीं बनता॥2॥

*** तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥ बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥3॥

भावार्थ:

तन, मन और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा। धीरज की धुरी को धारण करने वाले श्री रघुनाथजी ने भी धीरज त्याग दिया। वे कमल सदृश नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा (समाज) दुःखी हो गई॥3॥

*** मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसें कनक से॥ जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥4॥

भावार्थ:

मुनिगण, गुरु वशिष्ठजी और जनकजी सरीखे धीरधुरन्धर जो अपने मनों को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्माजी ने निर्लेप ही रचा और जो जगत् रूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही (जगत् में रहते हुए भी जगत् से अनासक्त) पैदा हुए॥4॥

दोहा :

*** तेउ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार। भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥317॥

भावार्थ:

वे भी श्री रामजी और भरतजी के उपमारहित अपार प्रेम को देखकर वैराग्य और विवेक सहित तन, मन, वचन से उस प्रेम में मग्न हो गए॥317॥

चौपाई :

*** जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥ बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥1॥

भावार्थ:

जहाँ जनकजी और गुरु वशिष्ठजी की बुद्धि की गति कुण्ठित हो, उस दिव्य प्रेम को प्राकृत (लौकिक) कहने में बड़ा दोष है। श्री रामचंद्रजी और भरतजी के वियोग का वर्णन करते सुनकर लोग कवि को कठोर हृदय समझेंगे॥1॥

*** सो सकोच रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥ भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए॥2॥

भावार्थ:

वह संकोच रस अकथनीय है। अतएव कवि की सुंदर वाणी उस समय उसके प्रेम को स्मरण करके सकुचा गई। भरतजी को भेंट कर श्री रघुनाथजी ने उनको समझाया। फिर हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगा लिया॥2॥

*** सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥ सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥3॥

भावार्थ:

सेवक और मंत्री भरतजी का रुख पाकर सब अपने-अपने काम में जा लगे। यह सुनकर दोनों समाजों में दारुण दुःख छा गया। वे चलने की तैयारियाँ करने लगे॥3॥

*** प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥ मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥4॥

भावार्थ:

प्रभु के चरणकमलों की वंदना करके तथा श्री रामजी की आज्ञा को सिर पर रखकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवता सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की॥4॥

दोहा :

*** लखनहि भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि। चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥318॥

भावार्थ:

फिर लक्ष्मणजी को क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण करके और समस्त मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले॥318॥

चौपाई :

*** सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥ देव दया बस बड़ दुखु पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ॥1॥

भावार्थ:

छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत श्री रामजी ने राजा जनकजी को सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकार से विनती और बड़ाई की (और कहा-) हे देव! दयावश आपने बहुत दुःख पाया। आप समाज सहित वन में आए॥1॥

*** पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥ मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥2॥

भावार्थ:

अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिए। यह सुन राजा जनकजी ने धीरज धरकर गमन किया। फिर श्री रामचंद्रजी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु और शिव के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया॥2॥

*** सासु समीप गए दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥ कौसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥3॥

भावार्थ:

तब श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाई सास (सुनयनाजी) के पास गए और उनके चरणों की वंदना करके आशीर्वाद पाकर लौट आए। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरण वाले कुटुम्बी, नगर निवासी और मंत्री-॥3॥

*** जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥ नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥4॥

भावार्थ:

सबको छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित श्री रामचंद्रजी ने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया। कृपानिधान श्री रामचंद्रजी ने छोटे, मध्यम (मझले) और बड़े सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उनको लौटाया॥4॥

दोहा :

*** भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि। बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि॥319॥

भावार्थ:

भरत की माता कैकेयी के चरणों की वंदना करके प्रभु श्री रामचंद्रजी ने पवित्र (निश्छल) प्रेम के साथ उनसे मिल-भेंट कर तथा उनके सारे संकोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया॥319॥

चौपाई :

*** परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥ करि प्रनामु भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू॥1॥

भावार्थ:

प्राणप्रिय पति श्री रामचंद्रजी के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नैहर के कुटुम्बियों से तथा माता-पिता से मिलकर लौट आईं। फिर प्रणाम करके सब सासुओं से गले लगकर मिलीं। उनके प्रेम का वर्णन करने के लिए कवि के हृदय में हुलास (उत्साह) नहीं होता॥1॥

*** सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥ रघुपति पटु पालकीं मगाईं। करि प्रबोधु सब मातु चढ़ाईं॥2॥

भावार्थ:

उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीताजी सासुओं तथामाता-पिता दोनों ओर की प्रीति में समाई (बहुत देर तक निमग्न) रहीं! (तब) श्री रघुनाथजी ने सुंदर पालकियाँ मँगवाईं और सब माताओं को आश्वासन देकर उन पर चढ़ाया॥2॥

*** बार बार हिलि मिलि दुहु भाईं। सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं॥ साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥3॥

भावार्थ:

दोनों भाइयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिल-जुलकर उनको पहुँचाया। भरतजी और राजा जनकजी के दलों ने घोड़े, हाथी और अनेकों तरह की सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया॥3॥

*** हृदयँ रामु सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥ बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥4॥

भावार्थ:

सीताजी एवं लक्ष्मणजी सहित श्री रामचंद्रजी को हृदय में रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल-घोड़े, हाथी आदि पशु हृदय में हारे (शिथिल) हुए परवश मन मारे चले जा रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत। फिरे हरष बिसमयसहित आए परन निकेत॥320॥ भावार्थ:गुरु वशिष्ठजी और गुरु पत्नी अरुन्धतीजी के चरणों की वंदना करके सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामचंद्रजी हर्ष और विषाद के साथ लौटकर पर्णकुटी पर आए॥320॥

चौपाई :

*** बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥ कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥1॥ भावार्थ:

फिर सम्मान करके निषादराज को विदा किया। वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदय में विरह का भारी विषाद था। फिर श्री रामजी ने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगों को लौटाया। वे सब जोहार-जोहार कर (वंदना कर-करके) लौटे॥1॥

*** प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥ भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥2॥

भावार्थ:

प्रभु श्री रामचंद्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी बड़ की छाया में बैठकर प्रियजन एवं परिवार के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। भरतजी के स्नेह, स्वभाव और सुंदर वाणी को बखान-बखान कर वे प्रिय पत्नी सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी से कहने लगे॥2॥

*** प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥ तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥3॥

भावार्थ:

श्री रामचंद्रजी ने प्रेम के वश होकर भरतजी के वचन, मन, कर्म की प्रीति तथा विश्वास का अपने श्रीमुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी, पशु और जल की मछलियाँ, चित्रकूट के सभी चेतन और जड़ जीव उदास हो गए॥3॥

*** बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥ प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥4॥

भावार्थ:

श्री रघुनाथजी की दशा देखकर देवताओं ने उन पर फूल बरसाकर अपनी घर-घर की दशा कही (दुखड़ा सुनाया)। प्रभु श्री रामचंद्रजी ने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मन में जरा सा भी डर न रहा॥4॥

दोहा :

*** सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर। भगति ग्यानु बैराग्य जनु सहित धरें सरीर॥321॥

भावार्थ:

छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी समेत प्रभु श्री रामचंद्रजी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण कर के शोभित हो रहे हों॥321॥